महिलाओं की गरिमा के लिए एक प्रयास

तीन तलाक पर संसद द्वारा पारित कानून अभूतपूर्व है। इसके माध्यम से लंबे समय से चली आ रही एकपक्षीय, असंवैधानिक अनुचित प्रथा को खत्म कर दिया गया है। इसके खत्म होने से भारतीय मुस्लिम महिलाओं को असुरक्षा और अनिश्चित भविष्य की आशंका में जीने से राहत मिली है।

तीन तलाक की लड़ाई प्रत्येक मुस्लिम महिला की लड़ाई थी, जिसे एक अत्यंत सामान्य मुस्लिम महिला ने शुरू किया था। समुदाय में तलाक-ए-बिद्दत का प्रचलन था। इसको समुदाय की मान्यता प्राप्त थी। अर्थात् तलाक देने के कुछ निश्चित समय तक अगर पुरूष को अपनी गलती का एहसास हो जाता, तो वह उसे सुधार सकता था। इस अवधि को काटना प्रत्येक मुस्लिम महिला के लिए दर्दनाक हुआ करता था। इस अन्याय और असमानता को सहने वाली हर महिला को यह अधिकार था कि वह भारतीय संविधान से प्राप्त अपने समानता के अधिकार की सरकार से रक्षा प्राप्त करे।

तीन तलाक को अपराध घोषित करने की इस जीत को राजनैतिक नहीं, बल्कि जन सामान्य की जीत समझा जाना चाहिए। इस प्रगतिशील कानून का विरोध करने वालों पर हैरानी होती है कि वे एक ओर तो 1995 की बीजिंग घोषणा की बात करते हैं, और दूसरी ओर अपने ही देश में महिला की गरिमा की रक्षा करने वाले कानून के विरोध में खड़े हो जाते हैं।

तीन तलाक का मामला सीधे-सीधे लैंगिक न्याय से जुड़ा हुआ है। प्रथा का निषेधक करने वाला कानून मानवाधिकारों की सुनिश्चितता और महिलाओं की स्वतंत्रता की दिशा में महत्वपूर्ण है। अनेक आपराधिक मामलों के दुष्परिणाम के लिए पीड़ित पक्ष को क्षतिपूर्ति दी जाती है। तीन तलाक के संदर्भ में अगर शाहबानों का मामला देखें, तो 70 वर्षीय इस महिला को तीन तलाक के बाद क्या क्षतिपूर्ति दी जा सकती थी? इस प्रथा के विरूद्ध एक कानून बनाना ही इसका सर्वश्रेष्ठ उपाय हो सकता था।

तीन तलाक की प्रथा किसी व्यक्ति के लिए नहीं, बल्कि पूरे समाज के लिए एक धब्बा थी। इसे दंडनीय अपराध की श्रेणी में लाने के लिए सरकार की प्रशंसा की जानी चाहिए।

अनेक देशों में अपराधशास्त्र के निरोध सिद्धांत से आपराधिक न्याय को नई दिशा दी जा रही है।

संवैधानिक नैतिकता को भी भूला नहीं जा सकता। उच्चतम न्यायालय ने भी यह माना है कि तीन तलाक की प्रथा का धार्मिक स्वतंत्रता में कोई स्थान नहीं है, और यह महिलाओं की गरिमा के भी विरुद्ध है। लैंगिक न्याय की स्थापना करना संवैधानिक लक्ष्य है, और इसको सुनिश्चित किए बिना देश की आधी जनता अपने अधिकारों का पूरा उपयोग नहीं कर सकती है। संविधान के अनुच्छेद 51-ए(ई) में महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध चलाई जाने वाली प्रथाओं को समाप्त करने की बात कही गई है। ऐसे में सरकार से यही अपेक्षा की जा सकती है कि वह संविधान के मूल्यों की रक्षा के लिए उचित कदम उठाए। संविधान का बुनियादी ढांचा कहे जाने वाले तीन तलाक के विरुद्ध कानून बनाना जरूरी था। अनुच्छेद 14,15 और 21 भी यह स्पष्ट करते हैं कि धार्मिक स्वतंत्रता की सीमा में न आने वाले संवैधानिक मूल्यों का आस्तित्व भी रहेगा जब लोगों को संवैधानिक पैमाने के अनुसार निर्देशित किया जाएगा।

यह भी जानना जरूरी है कि किसी मनमाने और अनुचित प्रावधान को अपराध घोषित किए जाने का यह पहला मामला नहीं है। हिन्दुओं में प्रचलित बहु विवाह को 1960 में हिन्दु दंड संहिता के द्वारा गैर-कानूनी घोषित किया गया था। 1955 का हिन्दू विवाह अधिनियम एक वैध हिन्दू विवाह की शर्तों का उल्लेख करता है। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि विवाह के समय किसी भी पक्ष का जीवित जीवनसाथी नहीं होना चाहिए।

इसी प्रकार हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून लाया गया था। ऐसे मामले धर्म या विश्वास से जुड़े हुए नहीं हैं, बल्कि लैंगिक न्याय और समानता की राह में अवरोध होते हैं। अन्यायी और भेदभाव करने वाले पारिवारिक कानूनों को दफन करने का एकमात्र उद्देश्य, लैंगिक एवं धार्मिक भेदभाव का संज्ञान लेकर मुस्लिम महिलाओं को समान अधिकार दिलाना था।

अपनी आत्मा और शब्दों से महिलाओं के समानता के अधिकार की रक्षा करने वाली वर्तमान सरकार प्रशंसनीय है। जिसे पवित्र कुरान में गलत या बुरा बताया गया हो, उसे शरिया में अच्छा कैसे माना जा सकता है। जिसे धर्मशास्त्र में गलत ठहराया जाता है, कानून की दृष्टि में भी वह गलत ही होता है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित भूपेन्द्र यादव के लेख पर आधारित। 2 अगस्त, 2019